अंतदृष्टि

गीता में भगवान ने मानव मात्र को कर्मयोगी बनने की शिक्षा दी है, जिसका भाव है- कर्म करते हुए अथवा गृहस्थ में रहते हुए एक परमात्मा से बुद्धि योग स्थापित करना। मन व बुद्धि को समर्पण भाव से परमात्मा की स्मृति एवं उसके प्रेम में स्थित करना ही योग है। परन्तु ईश्वर का कथन यह है कि- हे आत्माओं! ईश्वरीय स्मृति में बुद्धि तभी स्थिर हो सकती है, जब मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है। यदि कर्म इन्द्रियों को वश में न किया जाए और उन पर स्वयं का नियंत्रण न किया ज्जाए, तो वे मन को चंचल बनाकर मनुष्य के विवेक को हर लेती हैं। ईन्द्रिय निग्रह के बिना परमात्मा की साधना के समय भी इन्द्रियों के विषय भोग याद आते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति मूढ़मति अथवा मिथ्याचारी कहलाते हैं। अतः आत्मसंयम बिना योग साधना सम्भव नहीं है। इन्द्रियों के नियंत्रण में ब्रह्मचर्य का विशेष स्थान है। इसीलिए गीता में काम को महाशत्रु कहते हुए मारने की सलाह दी गई है। भाव यह है कि योग द्वारा ईश्वरीय अनुभूति करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य है। इसी प्रकार क्रोध, लोभ आदि विकारों को नर्क का द्वार माना गया है।

क्रोध द्वारा बुद्धि का नाश होता है। इसलिए इन विकारों के त्याग की आवश्यकता है। योगी मन को परमात्मा से जोड़ने का पुरुषार्थ करता हैं। इसीलिए गीता में योगी को युक्ति-युक्त और संयम युक्त आहार-विहार अपनाने का निर्देश दिया गया है। अतः योग के लिए अति आहार करना या निराहार रहना, अतिनिद्रा और अनिद्रा दोनों ही अनुचित है। इसी प्रकार योगी का भोजन गरिष्ठ माँसाहारी, बासा अथवा अधिक तीक्ष्ण नहीं होना चाहिए। ऐसा भोजन आयु को घटाता है और मन को भारी बनाता है।

गीता में यह भी कहा गया है कि परमात्मा द्वारा प्राप्त भोजन उनकी स्मृति में ही ग्रहण किया जान चाहिए, जिससे उसमें शक्ति आती है। ऐसा न करना सर्वथा चुराकर भोजन करना है। स्वार्थ के लिए या मात्र पेट के लिए भोजन करने वाले को पाप आत्मा कहा जाता है। आहार शुद्धि और विचार शुद्धि का पालन करना भी जरूरी है। क्योंकि अशुद्ध और आसुरी भाव सर्वथा मन को परमात्मा में लगाने में बाधक है। इसलिए मन ईश्वर में लगाए रखने के लिए अहिंसा, प्यार, संतोष, मैत्रीभाव, सेवा, दया, करुणा, आदि सद्गुणों की धारणा आवश्यक है। मन को शान्त चित बनाने के लिए गीता में भगवान ने योग साधकों से कहा है कि, उपराम वृत्ति द्वारा मन में यही भाव उत्पन्न करो, **मुझे जो पाना था सो मैंने पा लिया, अब मुझे कुछ पाने की इच्छा नहीं है।** योगी के लिए भगवान की आज्ञा है कि वह एक मुझसे ही प्रीत जुटाए और सर्व के प्रति निरासक्त बने। भगवान ने योगी को यूँ भी सावधान किया है, कि वह जो कुछ भी करे, मुझे अर्पण करके ही करे। अपनी बुद्धि को भी मुझ पर समर्पण कर दे। ताकि उसका ममत्व, अधिकार और अहंकार मिट जाए। वह सदा सर्व के प्रति मैत्री, करुणा और क्षमा का व्यवहार करे। राग-द्वेष के वश न हो

पुनश्च ईश्वर ने कहा है- **योगी वह है, जो सदा संतुष्ट रहे तथा अटल निश्चयबान हो।** इस प्रकार योग के नियमों का पालन करने वाली योगी आत्माएँ सदैव स्वयं को सर्व प्रप्ति स्वरूप अनुभव करती हैं।

-ब्रह्माकुमारीज़